15 अति सरलीकरण के दौर में एक काँपता स्वर

Ldyk e dyk f'k{kk d lUnHk e fQYe lekykpuk

वी. प्रसाद

कक्षा में क्लब की गतिविधियों एवं अधिगम के उपकरण के रूप में सिनेमा

"प्रयत्न करना कला है, ढूँढ़ निकालना सौन्दर्यानुभव है।"

प्रख्यात दार्शनिक जे. कृष्णमूर्ति का कहना है, "वस्तुओं को उनके सही स्थान पर रखना कला है।" न्यूनतम सिनेमा के स्वीडिश मास्टर इंगमर बर्गमैन से पूछा गया कि क्या उन्हें लगता है कि मनुष्य जाति के लिए कला उपयोगी है। उन्होंने दो टूक उत्तर दिया, "उसे उपयोगी होना ही चाहिए, होना ही चाहिए, वरना हम सब नरक में ही क्यों न चले जाएँ।"

अब वर्तमान में चलें।

एक शाम को आई.पी.एल. क्रिकेट की भारी शून्यता के बीच हर्ष भोगले ने टी.वी. पर स्पिन के जादूगर ई.ए.एस. प्रसन्ना से पूछा, कि अगर उन्हें आज आई.पी.एल. में गेंदबाजी करनी पड़े, जहाँ बेहद तेजी से गेंद फेंकनी पड़ती है, तो क्या वे आज भी बल्लेबाज के हिसाब से गेंद फेंकेंगे? प्रसन्ना ने कहा, "उन्हें इस बात से कभी कोई फर्क नहीं पड़ा कि वे किस बल्लेबाज को गेंद फेंक रहे हैं और न ही कभी उन्होंने बल्लेबाज के हिसाब से गेंद फेंकी। मेरे लिए तो यह बात मायने रखती थी कि क्या मैं अपनी गेंद की तेज उड़ान से बल्लेबाज को झाँसा दे पाऊँगा भले ही वह कोई भी हो। जब तक मैं ऐसा कर सकूँ, मैं अवश्य गेंद फेंकूँगा!"

उनके लिए स्पिन गेंदबाजी का मतलब सिर्फ गेंद फेंकना या उसे ऊपर उछालना नहीं था बल्कि यह तो बल्लेबाज को लगातार झाँसा देने का प्रयास था। प्रसन्ना के लिए स्पिन गेंदबाजी का मतलब झाँसा देना और गेंद की उड़ान थी। इस प्रकार उनकी गेंदबाजी का सौन्दर्यबोध था—गेंद की उड़ान एवं झाँसा !

हर्ष ने आगे पूछा कि वे आज देश के ऑफ स्पिनरों की स्थिति के बारे में क्या सोचते हैं? स्पिन गेंदबाजी के महारथी ने कहा, "स्पिन गेंदबाजी यानि अपने पर भरोसा एवं दृढ़ आत्मविश्वास रखना जिसके बिना कोई भी स्पिनर विकास नहीं कर सकता और अपनी कला में दक्ष नहीं हो सकता। आज के स्पिनरों में आत्मविश्वास का अभाव है और इसके बिना गेंदबाजी में झाँसा देना सम्भव नहीं।"

स्पिन गेंदबाजी का स्कूलों में कला सिखाने से क्या सम्बन्ध है?

मेरे विचार से स्कूली शिक्षा की आधारशिला यह है कि क्या वहाँ शिक्षा पूरी करने के बाद बच्चा जीवन का सामना करने के लिए आत्मविश्वास और सम्मान की भावना प्राप्त कर पाता है। कला से मुलाकात हो जाए तो इस दिशा में एक खिड़की खुल सकती है। और शायद कला में, खोज की प्रक्रिया के रूप में, बच्चों को रूप एवं विषय–सामग्री के सौन्दर्यानुभव के प्रति संवेदनशील बनाया जा सकता है।

हम आज जिस युग में रह रहे हैं, उसमें बच्चे सभी प्रकार

की अपरिमित एवं विविध जानकारियों को पाने में समर्थ हैं। इसमें से अधिकतर जानकारी का "सरलीकरण" कर दिया गया है ताकि उसे आसानी से आत्मसात किया जा सके और उस तक आसानी से पहुँचा जा सके। लेकिन इस प्रक्रिया में अकसर बच्चे की कल्पना करने और लिखित सामग्री के वास्तविक अर्थ को समझने की क्षमता को चुनौती देने वाली बात कहीं पीछे छूट जाती है। बच्चों को यह बात समझाने पर भी कोई ध्यान नहीं दिया जाता कि कहानियों, आख्यानों आदि का अन्त किसी स्पष्ट उपसंहार के साथ ही हो यह जरूरी नहीं है। आजकल जानकारियों के प्रवाह की मात्रा एवं गुणवत्ता ऐसी है कि बच्चे का मन जानकारी के चयन और ग्रहण में ही लगा रहता है। इस वजह से जानकारी की प्रकृति के गम्भीर रूप से परीक्षण एवं विचार–विमर्श या विश्लेषण करने की गुंजाइश ही नहीं रहती क्योंकि इसमें समय लगता है। आज के जमाने में समय का मिलना भी एक विलासिता है। हम जिस युग में रहते हैं वहाँ समय एक ऐसा कारक है जो हमें आजाद करने की बजाए बन्दी बनाकर नियन्त्रित करता है, इसलिए हमें जल्द से जल्द मुद्दे पर आना पड़ता है और अपनी बात स्पष्टता से कहनी पड़ती है।

तो, जानकारी के इस तेज एवं आसान रफ्तार विकास के युग में यह पूछना एकदम प्रासंगिक है कि स्कूल में बच्चों को कला एवं उसकी सराहना के लिए संवेदनशील बनाना महत्त्वपूर्ण क्यों है? कला के सम्पर्क में आने के लिए बच्चों को शिक्षित करना इस बात का अवसर देता है कि वे उसके गुणों को जान सकें जो इस प्रकार हैं–अवलोकन, गहन रूप से साझा करना, चिन्तन, शान्ति, मौन, किसी बात के लिए समय लेना आदि जो शायद सामान्य विषयों के एकदम विपरीत हैं।

इस सन्दर्भ में देखा जाए तो स्कूलों में फिल्म समालोचना प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण है। कला के सभी रूपों में सिनेमा की उम्र सबसे कम है और यह अपने से पहले आने वाले कला के सभी अन्य रूपों जैसे संगीत, नृत्य, पेंटिंग, नाटक आदि का समन्वय है। लेकिन दुर्भाग्य से इसे अपने कन्धों पर मनोरंजन करने का भार भी ढोना पड़ता है। फिल्मों को गतिशील एवं मनोरंजक होना चाहिए–उनसे कम से कम इतनी अपेक्षा तो की ही जाती है। सिनेमा की प्रकृति से इस प्रकार की व्यापक माँग पहले उल्लिखित "सरलीकरण" में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है और शायद यही कारण है कि नवीन विचारों की बुवाई के लिए परिपक्व और खिलने के लिए तैयार युवा मन निर्जीव हो जाते हैं। चिन्तन करने एवं उपयुक्त बीजों को खोजकर युवा मन में बोने की सतत प्रक्रिया ही शिक्षा है। स्कूल में कला–शिक्षा शायद एक ऐसा ही प्रयास है और फिल्म समालोचना क्लब इस तरह की खोज का परिणाम है। यह "सरलीकरण" के उस रूप को चुनौती देने का अवसर प्रदान करता है जिसके द्वारा बच्चे विश्व सिनेमा को देखकर कला से रूबरू हो सकें और उसका स्वाद चख सकें। यह बच्चों के लिए उन कलाकारों का काम देखने का अवसर है जिन्होंने फिल्म के माध्यम का उपयोग एक अलग तरह से करने की हिम्मत की है। वे ऐसे कलाकारों के काम से परिचित होते हैं जो कल्पनापूर्ण कहानियाँ सुनाते हैं और जिन्होंने सिनेमा के माध्यम का उपयोग सिर्फ मनोरंजन या व्यवसाय के लिए न करके अन्य प्रयोजनों के लिए भी किया है; इन कलाकारों ने इस माध्यम की सीमाओं को आगे बढ़ाया है। तो फिर, विभिन्न संस्कृतियों की अलग–अलग शैलियों से परिचित होने की इस प्रक्रिया से बच्चों के मन पर क्या असर पड़ता है?

प्रसिद्ध भारतीय फिल्म निर्माता सत्यजित रे ने कहा है कि, "अगर फिल्म कला का रूप है तो सौन्दर्यानुभूति को इससे उभरकर निकलना ही चाहिए।" आजकल बच्चे लगातार जिस तरह की फिल्मों के सम्पर्क में आते हैं वे मुख्यधारा की मनोरंजन करने वाली फिल्में होती हैं। क्या यह सम्भव है कि उन्हें भिन्न प्रकार की फिल्मों के सम्पर्क में लाकर फिल्म समालोचना के माध्यम से कला की शिक्षा दी जाए ताकि उन्हें उस सौन्दर्यानुभूति के प्रति संवेदनशील बनाया जा सके जो फिल्म समालोचना क्लब में दिखाई जाने वाली फिल्मों में होती है; ऐसी फिल्में जो अन्यथा उन्हें देखने को मिलती ही नहीं–शायद? सौन्दर्यबोध यानि ऐसे सिद्धान्तों का समूह जो किसी चीज को सुन्दर बनाता है, जो आनन्द

को बढ़ाता है, वे बारीकियाँ जो किसी चीज को अनुपम बनाती हैं और इस प्रकार बच्चों को सीखने एवं सराहना करने का अवसर देती हैं। उदाहरण के लिए सत्यजित रे की 'अपराजितो' में बालक अपु के बचपन से युवा–वयस्क तक के विकास में इन बातों पर जोर दिया गया है–बनारस का चित्रण जो बालक के पूरे जीवन पर छाया हुआ है, उसका अपनी विधवा माँ से रिश्ता जो शुरू में तो अच्छा है पर बाद में उसमें इतनी दरारें पड़ जाती हैं कि अन्त में वे अलग हो जाते हैं, उसकी स्कूल जाने की इच्छा और बाद में गाँव छोड़ देना, प्रकाश–पर्व की ध्वनि एवं प्रचण्डता के मध्य अपने मरणासन्न पिता के साथ बिताए गए अन्तिम कुछ घण्टे, जिसमें देखभाल व स्नेह की भावना है और एक छोटे बालक के रूप में मौत के साथ उसकी मुठभेड़–ये सारे विषय यूँ तो सार्वभौमिक हैं, लेकिन रे ने इन्हें जिस तरह से दर्शाया है वह कलात्मक गुणवत्ता की विशिष्टता के रूप में अद्‌भुत हैं।

सत्यजित रे की फिल्म "अपराजितो" का एक दृश्य

इस प्रकार स्कूल में, कला शिक्षा के सन्दर्भ में, फिल्म समालोचना क्लब के होने से बच्चों को सौन्दर्य सम्बन्धी संवेदनशीलता को विकसित करने का मौका मिलता है, साथ ही मुख्यधारा की संस्कृति का विकल्प भी सामने आता है। कला का तात्पर्य है रूप और विषय–सामग्री, जहाँ 'रूप' का अर्थ है कि कलाकार (यहाँ फिल्म निर्देशक) उपलब्ध उपकरणों जैसे ध्वनि, संगीत, सम्पादन, छायांकन आदि का उपयोग सिनेमा में कहानी कहते समय कैसे करता है; और 'विषय–सामग्री' का अर्थ है कथा की खुद की गुणवत्ता–यानि जिस तरह से वह प्रकट एवं विकसित होती है, चरित्र–चित्रण जिसमें विषय–सामग्री का खुलासा, नाट्य रचना एवं भावनाओं की बारीकियाँ शामिल हैं। जिस प्रक्रिया द्वारा यह परिचय प्राप्त होता है वह है–फिल्म को देखने के बाद उसके रूप, विषय–सामग्री और शैली पर होने वाली चर्चा। इस तरह के परिचय के लिए कई विभिन्न फिल्में देखनी पड़ती हैं, तभी बच्चों के सामने इनका खुलासा होता है और धीरे–धीरे इसका विकास होता है। जैसे–जैसे बच्चे संसार भर की फिल्मों को देखते हैं और उनमें उनकी समझ विकसित होती जाती है, वैसे–वैसे उनके सौन्दर्यानुभव का क्षितिज विस्तृत होता जाता है। वे कला के जिस किसी रूप को भी देखते हैं, उसके सूक्ष्म पहलुओं का आनन्द लेने में सक्षम हो जाते हैं।

कक्षा में फिल्में या विशिष्ट दृश्यों/कथाक्रमों को देखने से बच्चों को विश्लेषण के आवश्यक कौशल आत्मसात करने में मदद मिलती है जिससे उनकी सिनेमा के सूक्ष्म पहलुओं को समझने की क्षमता बढ़ती है। यही नहीं इसके द्वारा वे इन बातों के बारे में भी जान लेते हैं जैसे–केन्द्रीय विचार या विषय–सामग्री को पहचानना व समझना, ध्वनि, संगीत, भाषा, पर्दे के ऊपर और उसके पीछे के उन प्रभावों को जान लेना जो विचारों को प्रकट करते हैं। कलाकारों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले उन विशिष्ट तरीकों की समझ विकसित करना जो उनकी व्यक्तिगत शैली में योगदान देते हैं। विश्लेषणात्मक एवं समीक्षात्मक रूप से सोचने के ये कौशल कक्षा में बहुत काम आते हैं। ये पाठ्य–पुस्तकों को समझने एवं लेखन की गुणवत्ता के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। सौन्दर्य के गुणों के अवलोकन एवं उनकी पहचान के लिए जिस समीक्षात्मक सोच की जरूरत होती है उसे बढ़ाने में फिल्म के प्रदर्शन के बाद की चर्चाएँ बहुत उपयोगी होती हैं। उदाहरण के लिए विटोरियो डि सिका की फिल्म 'बाइसिकल थीफ' में हताशा व संघर्ष की थीम इटली में विश्वयुद्ध के बाद उत्पन्न निराशा में घटित होती है। अपनी साइकिल की खोज में पिता की निराशा बढ़ती जाती है।

उसे अपने काम के लिए उस साइकिल की बहुत ज्यादा जरूरत है। अन्त में, उसे ढूँढ़ने की प्रक्रिया में, पुत्र के सामने पिता की अवमानना प्रकट होती है। अपनी साइकिल को खोजने के लिए पिता के द्वारा अपनाए तरीकों पर पुत्र की अधीरता व क्रोध बढ़ता जाता है और इसके ठीक विपरीत, अपनी निराशाजनक स्थिति के चलते पिता को हताशापूर्ण तरीकों को अपनाना ही पड़ता है। फिल्म को देखने के बाद जो चर्चाएँ होती हैं, वे बच्चों को कलात्मक अभिव्यक्ति की बारीकियों एवं सूक्ष्मताओं के बारे में जानने में मदद देती हैं। इस प्रकार वे कला के क्षेत्र में अपनी संवेदना का विस्तार करने में सक्षम हो जाते हैं। फिल्म प्रदर्शन के बाद और चर्चा के दौरान जिन बातों को गहराई से साझा किया जाता है और अवलोकन किया जाता है, उनसे बच्चों में खुद पर यकीन करने की भावना आती है और आपसी साझेदारी के माध्यम से उनका आत्मविश्वास भी बढ़ता है। बच्चों में इस बात की जागरूकता आती है कि मतभेदों के बावजूद भी दुनिया की सभी संस्कृतियाँ सही हो सकती हैं। विश्व की फिल्मों को देखकर बच्चे उन मामलों को वर्गीकृत करने, निष्कर्ष निकालने और सोचने को प्रेरित होते हैं जो देशीय और वैश्विक रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। यह एक ऐसा अनुभव है जो कि अन्ततः उन्हें चिन्तनशील बनने में मदद देता है और शायद यही शिक्षा का एक स्वाभाविक परिणाम है।

प्रसाद *अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन की स्कूल कोर टीम के साथ कार्यरत हैं एवं उत्तरकाशी के मातली गाँव में अज़ीम प्रेमजी स्कूल के मेंटर हैं। वे भूतपूर्व पेशेवर राज्य क्रिकेटर और अब एक शिक्षक हैं। वे अपने को रसिक बताते हैं और सिनेमा में रुचि रखने के साथ–साथ भारतीय तथा पश्चिमी शास्त्रीय संगीत सुनना पसन्द करते हैं। एक शिक्षक एवं प्रशासक के रूप में वे द स्कूल–के.एफ.आई.,चैन्नई तथा ऋषि वैली, बंगलौर के साथ अत्यन्त निकट रूप से जुड़े रहे हैं। उन्होंने कई नामी स्कूलों में पढ़ाया जहाँ IGCSE/A स्तर तथा International Baccalaureate (IB) का पाठ्यक्रम लागू था। शिक्षण सहायक सामग्री के रूप में कक्षा में सिनेमा (प्रासंगिक फिल्म क्लिपिंग दिखाना) का प्रयोग करने के साथ–साथ उन्होंने अपने सभी स्कूलों में फिल्म समालोचना को क्लब की एक गतिविधि के रूप में शुरू किया। उनसे v.prasad@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।* ***अनुवादः*** *नलिनी रावल*